इकाई

8 हिंदी साहित्य का इतिहास

4QDJ2J

हिंदी साहित्य का इतिहास

साहित्य के इतिहास का अध्ययन विभिन्न काल की परिस्थितियों और प्रवृत्तियों के आधार पर किया जाता है इसलिए काल विभाजन की प्रक्रिया द्वारा प्रत्येक काल की सीमा का निर्धारण किया जाता है। विभिन्न युगों में साहित्यिक प्रवृत्तियों की शुरुआत, उनका उतार–चढ़ाव उनकी सीमा का निर्धारण करती हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी काल विशेष में जो प्रवृत्तियाँ हैं, वे एकदम खत्म हो जाती हैं या उनमें एकदम परिवर्तन आ जाता है। काल विशेष में चलने वाली प्रवृत्तियाँ कमोबेश होती हुयी विलुप्त होने लगती हैं, और अन्य प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप धारण करने लगती हैं।

हिंदी साहित्य के आरम्भ काल को स्थिर करने की समस्या सदा से रही है। काल–सीमा– निर्धारण के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। जार्ज ग्रियर्सन, मिश्रबंधु, रामकुमार वर्मा आदि इतिहासकार अपभ्रंश भाषा के उत्तरवर्ती रूप को हिंदी का आदिम रूप मानकर उसकी शुरुआत संवत 700 से मानते हैं। जार्ज ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य का क्षेत्र भाषा की दृष्टि से निर्धारित किया जिसमें यह स्पष्ट किया गया कि हिंदी साहित्य में संस्कृत, प्राकृत, अरबी, फारसी मिश्रित उर्दू को समाहित किया जा सकता है।

'जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।' जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। कारण स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित् दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य का विवेचन करने में यह बात ध्यान में रखनी होगी कि किसी विशेष समय में लोगों में रुचिविशेष का संचार और पोषण किधर से और किस प्रकार हुआ। उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार हिंदी साहित्य के 900 वर्षों के इतिहास को चार कालों में विभक्त किया जा सकता है –

आदिकाल (वीरगाथाकाल संवत् 1050–1375)

मध्यकाल (भक्तिकाल, संवत् 1375–1700)

उत्तरमध्य काल (रीतिकाल, संवत् 1700–1900)

आधुनिक काल (गद्य काल, संवत् 1900–1984)

यद्यपि इन कालों की रचनाओं की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही इनका नामकरण किया गया है, पर यह न समझना चाहिए कि किसी विशेष काल में और प्रकार की रचनाएँ होती ही नहीं थीं। जैसे भक्तिकाल या रीतिकाल को लें तो उसमें वीररस के अनेक काव्य मिलेंगे जिनमें राजाओं की प्रशंसा उसी ढंग से की गई हैं जिस ढंग की वीरगाथाकाल में हुआ करती थी। अतः प्रत्येक काल का वर्णन इस प्रणाली पर किया जाएगा कि पहले तो उक्त काल की विशेष प्रवृत्ति सूचक उन रचनाओं का वर्णन होगा जो उस काल के लक्षण के अंतर्गत होंगी, उसके बाद संक्षेप में उनके अतिरिक्त और प्रकार की रचनाओं का ध्यान देने योग्य उल्लेख किया जाना प्रासंगिक प्रतीत होता है।

आदिकाल (वीरगाथाकाल संवत् 1050–1375)

आदिकाल को हिंदी साहित्य के अन्य इतिहासकारों ने कई और नाम दिए हैं, जिनमें मुख्य रूप से डॉ० रामकुमार वर्मा ने इस काल को संधि काल नाम से अभिहित किया है। राहुल सांस्कृत्यायन इस काल को सिद्ध सामंत काल कहते हुए यह मानते हैं कि सिद्ध काव्य हिंदी का काव्य ही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जब इस काल का नामकरण किया था, उस समय इस काल की अनेक रचनाएँ और ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध थी। जिन बारह रचनाओं को शुक्ल जी ने नामकरण का आधार बनाया, उनमे से कुछ संदिग्ध हैं तथा कुछ परवर्ती रचनाएँ हैं। इन रचनाओं के आधार पर इस काल की साहित्यिक प्रवृत्तियो की रूप रेखा स्पष्ट नहीं है। चंद्रधर शर्मा गुलेरी और डॉ० धीरेन्द्र वर्मा इस काल को अपभ्रंश काल कहते हैं। उनके द्वारा रखा गया यह नाम भाषा की प्रधानता पर आधारित है जबकि साहित्य के किसी काल का नामकरण उस काल की विशेष साहित्यिक प्रवृत्तियों या वर्णित प्रतिपाद्य विषय के आधार पर होना चाहिए। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इस काल को आदिकाल कहना उचित समझते हैं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस काल को बीजवपन काल के नाम से पुकारा है। कुछ विद्वानों ने इस काल को प्रारंभिक काल, आविर्भाव काल भी कहा है। ये नाम वास्तव में 'आदिकाल' नाम में ही समाहित हो जाते हैं। इस प्रकार सामान्यतः इस कालखंड को आदिकाल के नाम से जाना जाता है।

आदिकालीन साहित्य की प्रवृतियाँ –

ग्यारहवीं सदी में लगभग देशभाषा हिंदी का रूप अधिक स्फुट होने लगा। उस समय पश्चिमी हिंदी प्रदेश में अनेक छोटे छोटे राजपूत राज्य स्थापित हो गए थे। ये परस्पर अथवा विदेशी आक्रमणकारियों से प्रायः युद्धरत रहा करते थे। इन्हीं राजाओं के संरक्षण में रहनेवाले चारणों और भाटों का राजप्रशस्तिमूलक काव्य वीरगाथा के नाम से अभिहित किया गया। इन वीरगाथाओं को रासो कहा जाता है। इनमें आश्रयदाता राजाओं के शौर्य और

पराक्रम का ओजस्वी वर्णन करने के साथ ही उनके प्रेम–प्रसंगों का भी उल्लेख है। रासो ग्रन्थों में संघर्ष का कारण प्रायः प्रेम दिखाया गया है। इन रचनाओं में इतिहास और कल्पना का मिश्रण है। रासो वीरगीत (बीसलदेवरासो और आल्हा आदि) और प्रबंधकाव्य (पृथ्वीराजरासो, खुमाणरासो आदि)– इन दो रूपों में लिखे गए। इन रासो ग्रन्थों में से अनेक की उपलब्ध प्रतियाँ चाहे ऐतिहासिक दृष्टि से संदिग्ध हों पर इन वीरगाथाओं की मौखिक परंपरा असंदिग्ध है। इनमें शौर्य और प्रेम की ओजस्वी और सरस अभिव्यक्ति हुई है।

इसी कालावधि में मैथिल कोकिल विद्यापति हुए जिनकी पदावली में मानवीय सौंदर्य ओर प्रेम की अनुपम व्यंजना मिलती है। कीर्तिलता और कीर्तिपताका इनके दो अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। अमीर खुसरो का भी यही समय है। इन्होंने ठेठ खड़ी बोली में अनेक पहेलियाँ, मुकरियाँ रचे हैं। इनके गीतों, दोहों की भाषा ब्रजभाषा है।

इसके आलावा आदिकाल में अन्य प्रमुख साहित्य धाराएँ रहीं हैं –

- जैन साहित्य
- सिद्ध साहित्य
- नाथ साहित्य
- लोक साहित्य

भक्तिकाल (1300 से 1643 ई.)

यद्यपि अन्य युगों की भाँति भक्ति–काल में भी भक्ति–काव्य के साथ–साथ अन्य प्रकार की रचनाएँ होती रहीं, तथापि प्रधानता भक्तिपरक रचनाओं की ही रही। इसलिए भक्ति की प्रधानता के कारण चौदहवीं शती के मध्य से लेकर सत्रहवीं शती के मध्य तक के काल को भक्ति–काल कहना सर्वथा युक्तियुक्त है।

भारतीय इतिहास का मध्यकाल कई मायनों में महत्वपूर्ण परिवर्तनों का काल रहा है यह परिवर्तन न केवल राजनीति बल्कि समाज, संस्कृति, कला और साहित्य इत्यादि के क्षेत्र में भी असरकारी रहा। इस काल अवधि को युग परिवर्तक कहा जाता है। वह यही समय है मुगल सल्तनत भारत में स्थापित हो गया और इस्लाम के आने और फैलने के साथ–साथ हिन्दू–मुस्लिम जनता के बीच आपसी सौहार्द, सद्भाव, सामाजिक और सांस्कृतिक संपर्क भी बढ़ा इसी समय समाज के हाशिये से उठकर संत कवि मुख्य धारा में अपनी वाणियों के साथ आये, जिनमें ऊँच–नीच और जाति–पाति के भेद का नकार था। उन्होंने धार्मिक कट्टरवाद का भी मुखर विरोध किया। सामाजिक तौर पर इतने बड़े पैमाने पर बदलाव के आने के पीछे एक बड़ी वैचारिक पृष्ठभूमि का होना स्वाभाविक था क्योंकि सामाजिक तौर पर ऐसा प्रखर स्वर किसी एक दिन के विचार प्रक्रिया की उपज नहीं हो सकती, न ही आम जनता के लिए शंकराचार्य का ज्ञान मार्ग और अद्वैतवाद बहुत सहज और सरल रह गया था। भक्ति आन्दोलन सामाजिक जड़ता से निकलने की बेचैनी से उपजा आन्दोलन था, जो अपने सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों से उपजा

लोक का, आमजन का अपना आन्दोलन था. इसीलिए मध्य काल का यह आंदोलन अपने मूल रुप में एक धार्मिक–सांस्कृतिक आंदोलन है।

के. दामोदरन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भारतीय चिंतन परंपरा' में इस विषय पर बात करते हुए लिखते हैं "भक्ति आन्दोलन उस समय आरम्भ हुआ था, जब हिन्दू और मुसलमान पुरोहितों और उनके द्वारा समर्पित और समृद्ध किये गए निहित स्वार्थों के खिलाफ संघर्ष एक ऐतिहासिक आवश्यकता बन गया था। जनता को, जो अब तक क्षेत्रीय और स्थानीय निष्ठाओं से आबद्ध थी और युगों पुराने अन्धविश्वास और दमन–शोषण के बावजूद हतोत्साह नहीं हुई थी को जगाया जाना और अपने हितों तथा आत्म–सम्मान की भावना के लिए उसे एक किया जाना आवश्यक था। स्थानीय बोलियों और क्षेत्रीय भाषाओं को, एकता स्थापित करने वाली राष्ट्र भाषाओं के स्तर पर उठाना था। इस आंदोलन के चरित्र पर दामोदरन आगे भी लिखते हैं। "भक्ति आंदोलन ने देश के भिन्न–भिन्न भागों में, भिन्न–भिन्न मात्राओं में तीव्रता और वेग ग्रहण किया। यह आंदोलन विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ. किन्तु कुछ मूलभूत सिद्धांत ऐसे थे, जो समग्र रूप से पूरे आन्दोलन पर लागू होते थे। **पहला**– धार्मिक विचारों के बावजूद जनता की एकता को स्वीकार करना **दूसरा**–ईश्वर के समक्ष सबकी समानता **तीसरा**–जाति प्रथा का विरोध **चौथा**–यह विश्वास कि मनुष्य और ईश्वर के बीच तादात्म्य, प्रत्येक मनुष्य के सद्‌गुणों पर निर्भर करता है, न कि उसकी ऊँची जाति अथवा धन–सम्पति पर। **पाँचवा**–इस विचार पर जोर कि भक्ति ही आराधना का उच्चतम स्वरुप है और अंत में कर्मकांडों, मूर्तिपूजा, तीर्थाटनों और अपने को दी जाने वाली यंत्रणाओं की निंदा। भक्ति आन्दोलन मनुष्य की सत्ता को सर्वश्रेष्ठ मानता था।"

भक्तिकाल को रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में विभाजित किया जो निम्न प्रकार से हैं–

1. निर्गुण काव्यधारा

- ज्ञानमार्गी शाखा या संत काव्यधारा
- प्रेममार्गी शाखा या सूफी काव्यधारा

2. सगुण काव्यधारा

- रामभक्ति शाखा
- कृष्णभक्तिशाखा

ज्ञानमार्गी शाखा या संत काव्यधारा

भक्ति की इस शाखा में केवल ज्ञान–प्रधान निराकार ब्रह्म की उपासना की प्रधानता है। इसमें प्रायः मुक्तक काव्य रचे गये। दोहा और पद आदि स्फुट छंदों का प्रयोग हुआ है। ये कवि अक्सर देश के तमाम हिस्सों में भ्रमण

करते रहते थे और आम जन से मिलते जुलते रहते थे इसलिए इनकी भाषा में अनेक भाषाओं का पुट मिलता है जिसे रामचंद्र ने खिचड़ी एवं सधुक्कड़ी भाषा कहा है। इन रचनाकारों की रचनाओं का प्रमुख रस शांत है। इस काल के प्रमुख कवि व उनकी रचनाएँ निम्न हैं–

प्रमुख कवि– रचनाएँ

- कबीरदास– बीजक (साखी, सबद, रमैनी)
- दादू दयाल– साखी, पद
- रैदास– पद
- गुरु नानक– गुरु ग्रन्थ साहब में महला

प्रेममार्गी या सूफी काव्यधारा

इस शाखा में प्रेम–प्रधान निराकार ब्रह्म की उपासना का प्राधान्य था। इस काल में सूफी कवियों ने आत्मा को प्रियतम मानकर हिन्दू प्रेम कहानियों का वर्णन किया है। हिन्दू–मुस्लिम एकता इस शाखा की प्रमुखता है। इस काल के सभी महाकाव्य प्रेमकथाओं पर आधारित हैं,जो शास्त्रीय कसौटी पर खरे उतरते हैं। इस शाखा के प्रमुख कवि व उनकी रचनाएँ निम्न हैं–

प्रमुख कवि रचनाएँ

- मलिक मोहम्मद जायसी – पद्मावत, अखरावट, आखरी कलाम
- कुतुबन – मृगावती
- मंझन – मधुमालती
- उसमान – चित्रावली

सगुण रामभक्ति शाखा

इस काल में भगवान श्रीराम के सत्य, शील एवं सौन्दर्य प्रधान अवतार की उपासना की गयी है। इस काल में प्रबंध एवं मुक्तक दोनों प्रकार की काव्यों की रचना की गयी। इस काल में प्रमुख रूप से अवधी और ब्रजभाषा का उपयोग हुआ और कई छन्दों में रचनाएँ हुई। इस काल के काव्य में सभी रसों का समावेश हुआ, किन्तु शांत और श्रृंगार प्रधान रस है। इस शाखा के प्रमुख कवि व उनकी रचनाएँ निम्न हैं–

प्रमुख कवि रचनाएँ

गोस्वामी तुलसीदास – रामचरितमानस, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली

नाभादास – भक्तमाल

स्वामी अग्रदास – रामध्यान मंजरी

रघुराज सिंह – राम स्वयंवर

सगुण कृष्णभक्ति शाखा–

इस शाखा के कवियों ने भगवान कृष्ण की उपासना की है। इस शाखा में केवल मुक्तक काव्यों की रचना हुई। कृष्ण भक्ति के सभी पद ब्रजभाषा की माधुर्य भाव से ओत–प्रोत है।इस शाखा के कवियों ने मुख्यतः मुक्त छंद में रचनाएँ की हैं। इस काल में कवि सूरदास ने वात्सल्य रस को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। इस शाखा के प्रमुख कवि व उनकी रचनाएँ निम्न हैं–

प्रमुख कवि – रचनाएँ

- सूरदास – सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी
- नंददास – पंचाध्यायी
- कृष्णदास – भ्रमर–गीत, प्रेमतत्त्व
- परमानन्ददास – ध्रुवचरित, दानलीला
- चतुर्भुजदास – भक्तिप्रताप, द्वादश–यश
- नरोत्तमदास – सुदामा चरित
- रहीम– दोहावली, सतसई
- मीरा – नरसी का माहरा, गीत गोविन्द की टीका, पद

भक्तिकाल की प्रमुख विशेषताएँ–

- ईश्वर के सगुण तथा निर्गुण रूप की उपासना
- गुरु की महिमा का गुणगान

- ईश्वर के नाम की महिमा।
- लोक की भाषाओं–ब्रज एवं अवधी का काव्य में प्रयोग।
- ईश्वर के प्रति समर्पण की भावना।
- दीनता की अभिव्यक्ति।
- बाह्याडम्बरों का विरोध।
- मानवतावादी धर्म की महत्ता।
- व्यंग्यात्मक उपालम्भ शैली का प्रयोग।
- कविता में स्वान्तः सुखाय की भावना।

उत्तरमध्य काल (रीतिकाल, संवत् 1643–1857)

हिंदी साहित्य में उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल के नाम से जानते हैं, इसकी समय सीमा सन1643 से 1857तक ठहरती है। रीति शास्त्र के प्रमुख आचार्य वामन ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में रीति को काव्य की आत्मा कहा– 'रीतिर्रात्मा काव्यस्य' इसे और स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि विशिष्ट पद रचना रीति अर्थात काव्य में यदि विशिष्ट रचना का उपयोग किया गया है, तो वह रीति काव्य है आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसका कार्यकाल सम्वत 1650 से 1900 तक बताया है। लेकिन उससे पहले ही राष्ट्रीय आंदोलन का आरम्भ हो गया था और भारतेन्दु आदि रचनाकारों के लेखन में आधुनिक प्रवृत्तियाँ दिखने लगीं थीं, इसलिए इस काल को 1857 तक ही मानना चाहिए। रीति काल के ग्रंथों का अवलोकन करने पर श्रृंगार रस की प्रधानता, अलंकारों की बहुलता, मुक्तक शैली की प्रधानता, नारी का भोग्या स्वरूप, लक्षण ग्रंथों की बहुलता, प्रकृति का उद्दीपन रूप, सामन्ती अभिरुचि, भक्ति एवं वैराग्य का मिश्रण, आश्रयदाता की प्रशंसा रूप आदि प्राप्त होते हैं।

रीतिकाल के नामकरण को लेकर हिंदी साहित्य आलोचकों में बहुत मतभेद रहा है।अपने अध्ययन और समझ के अनुसार विभिन्न विद्वानों ने इसे नये–नये नाम से पुकारा. उन्होंने अपने नामकरण के पीछे निहित तथ्यों को भी बताया. जो इस प्रकार है–

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल – रीतिकाल
- आचार्य मिश्र बन्धु – अलंकृत काल
- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – श्रृंगार काल

• डॉ. रसाल – कला काल

रीतिकाल की रचनाओं को मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1.रीतिबद्ध काव्य धारा– इस काव्यधारा के अंतर्गत आने वाले कवि मुख्य रूप से आचार्य हैं. उन्होंने अपनी कविताओं में शास्त्रीय ढंग का उपयोग किया है. इन सभी ने कविता के साथ–साथ लक्षण ग्रंथों की भी रचना की है।

उदाहरण

गोर गात, पातरी, न लोचन समात मुख,

उर उरजातन को बात अवरो हिये,

हंसति कहत बात, फूल से झरत जात,

ओठ अवदात राति, देखि मन मोहिये

रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि चिंतामणि, केशवदास, मतिराम, देव, कुलपति, भिखारीदास, पद्‌माकर, ग्वाल आदि हैं।

2. रीतिसिद्ध काव्यधारा – इस काव्यधारा के अंतर्गत आने वाले कवियों ने लक्षण ग्रंथों की रचना तो नहीं की लेकिन लक्षण ग्रंथों का खूब गहराई से अध्ययन किया, जिसके कारण जब उन्होंने काव्य रचना कार्य शुरू किया तो लक्षण ग्रन्थ द्वारा निर्धारित सीमाओं का ध्यान रखा।

रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि बिहारी, रसनिधि, सेनापति आदि हैं।

उदाहरण

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहीं कोय,

ज्यों–ज्यों बूड़े श्याम रंग, त्यों–त्यों उज्जवल होय।

3.रीतिमुक्त काव्यधारा– इस काव्यधारा के कवियों ने लक्षण ग्रंथों द्वारा निर्धारित काव्य रचने की परिपाटी का ख्याल नहीं रखा। स्वच्छंद होकर काव्य रचना की। जिसके कारण उनके कविताओं का स्वरुप जनमानस के अधिक करीब रहा। इनकी रचनाओं में विशुद्ध प्रेम का उत्कृष्ट रूप मिलता है।

उदाहरण

भये अति निठुर, मिटाय पहिचान डारी,

याही दुःख हमें जक, लागी हाय–हाय है,

तुम तो निपट निरदई, गयी भूलि सुधि,

हमें शूल–सेलनि सो क्यूँ ही न भुलाय है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि नामकरण के रूप में आचार्य रामचंद शुक्ल का नामकरण ज्यादा समीचीन है। उन्होंने नामकरण के लिए केवल शास्त्रीय सहारा नहीं लिया है, बल्कि अध्ययन और उस काल के ग्रंथों की वैज्ञानिकता को भी तरजीह दी है। इसी तरह तीनों धाराओं के कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से इसे पूर्णता ही प्रदान की है।

रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि घनानंद, बोधा, ठाकुर, आलम, द्विजदेव आदि हैं।

आधुनिक काल (गद्य काल, संवत् 1857 से अब तक)

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल भारत के इतिहास के बदलते हुए स्वरूप से प्रभावित था। स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीयता की भावना का प्रभाव साहित्य में भी आया। भारत में औद्योगीकरण का प्रारंभ होने लगा था। आवागमन के साधनों का विकास हुआ। अंग्रेजी और पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव बढ़ा और जीवन में बदलाव आने लगा। ईश्वर के साथ–साथ मानव को समान महत्व दिया गया। भावना के साथ–साथ विचारों को पर्याप्त प्रधानता मिली। पद्य के साथ–साथ गद्य का भी विकास हुआ और छापेखाने के आते ही साहित्य के संसार में एक नयी क्रांति हुई।

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल अपने पिछले तीनों कालों से सर्वथा भिन्न है। आदिकाल में डिंगल, भक्तिकाल में अवधी और रीतिकाल में ब्रज भाषा का बोल–बाला रहा, वहीं इस काल में आकर खड़ी बोली का वर्चस्व स्थापित हो गया। अब तक के तीनों कालों में जहाँ पद्य का ही विकास हुआ था,वहीं इस युग में गद्य और पद्य समान रूप से व्यवहृत होने लगे। प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से भी इस युग में नवीनता का समावेश हुआ। जहां पुराने काल के कवियों का दृष्टिकोण एक सीमित क्षेत्र में बँधा हुआ रहता था, वहाँ आधुनिक युग के कवियों ने समाज के व्यवहारिक जीवन का व्यापक चित्रण करना शुरु किया। इसलिए इस युग की कविता का फलक काफी विस्तृत हो गया। राजनीतिक चेतना,समाज सुधार की भावना, अध्यात्मवाद का संदेश आदि विविध विषय इस काल की कविता के आधार बनते गए हैं।

आधुनिक युग की विस्तृत कविता–धारा की रूप रेखा जानने के लिए उसे प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर छः प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है।

1. भारतेन्दु युग (सन् 1857 से 1902) ।
2. द्विवेदी युग (सन् 1902 से 1916) ।
3. छायावादी युग (सन् 1916 से 1936) ।
4. प्रगतिवादी युग (सन् 1936 से 1943) ।
5. प्रयोगवादी और नवकाव्य युग (1943 से 1990)।
6. उत्तर आधुनिक युग (1990 से आज तक) ।

यद्यपि आधुनिक काल का आरम्भ सन 1857 से माना जाता है। किंतु आरम्भिक 15–18 वर्ष की कविता को संक्रांति युग की कविता कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें रीतिकालीन शृंगारिक तथा भारतेंदु कालीन प्रवृत्तियों का समन्वय–सा दिखाई पड़ता है।

भारतेन्दु युग–

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1855–85) को हिन्दी–साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। भारतेंदु युग ने हिंदी कविता को रीतिकाल के श्रृंगारपूर्ण और राज–आश्रय के वातावरण से निकाल कर राष्ट्रप्रेम, समाज–सुधार आदि की स्वस्थ भावनाओं से ओत–प्रेत कर उसे सामान्य जन से जोड़ दिया उन्होंने कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन और हरिश्चंद्र पत्रिका निकाली। साथ ही अनेक नाटकों की रचना की। उनके प्रसिद्ध नाटक हैं– चंद्रावली, भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी। ये नाटक रंगमंच पर भी बहुत लोकप्रिय हुए। इस काल में निबंध, नाटक, उपन्यास तथा कहानियों की रचना हुई। इस काल के लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधा चरण गोस्वामी, उपाध्याय बदरीनाथ चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवास दास, बाबू देवकी नंदन खत्री, और किशोरी लाल गोस्वामी आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश लेखक होने के साथ–साथ पत्रकार भी थे।

लाल श्रीनिवासदास के उपन्यास परीक्षागुरू को हिन्दी का पहला उपन्यास कहा जाता है। कुछ विद्वान श्रद्धाराम फुल्लौरी के उपन्यास भाग्यवती को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं। बाबू देवकीनंदन खत्री का चंद्रकांता तथा चंद्रकांता संतति आदि इस युग के प्रमुख उपन्यास हैं। ये उपन्यास इतने लोकप्रिय हुए कि इनको पढ़ने के लिये बहुत से अहिंदी भाषियों ने हिंदी सीखी। इस युग की कहानियों में राजा शिवप्रसाद, सितारे–हिन्द की राजा भोज का सपना महत्त्वपूर्ण है।

द्विवेदी युग–

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस युग का नाम द्विवेदी युग रखा गया। सन १९०३ ईस्वी में द्विवेदी जी ने सरस्वती पत्रिका के संपादन का भार संभाला। उन्होंने खड़ी बोली गद्य के स्वरूप को स्थिर किया और पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों के एक बड़े समुदाय को खड़ी बोली में लिखने को प्रेरित किया। इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ।

इस युग के निबंधकारों में पं महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, श्याम सुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बाल मुकंद गुप्त और अध्यापक पूर्ण सिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं, किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन और घटनाओं की रोचकता है। हिंदी

कहानी का वास्तविक विकास द्विवेदी युग से ही शुरू हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की इंदुमती कहानी को कुछ विद्वान हिंदी की पहली कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की दुलाई वाली, शुक्ल जी की ग्यारह वर्ष का समय, प्रसाद जी की ग्राम और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की उसने कहा था महत्त्वपूर्ण हैं। समालोचना के क्षेत्र में पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं। हरिऔध, शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा कुछ नाटक लिखे गए।

छायावाद युग

कविता की दृष्टि से इस काल में एक दूसरी धारा भी थी जो सीधे सीधे स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ी थी। इसमें माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, नरेंद्र शर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, आदि के नाम उल्लेखनीय है।

इस युग की प्रमुख कृतियों में जय शंकर प्रसाद की कामायनी और आँसू सुमित्रानंदन पन्त का पल्लव, गुंजन और वीणा, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की गीतिका और अनामिका, तथा महादेवी वर्मा की यामा, दीपशिखा और सांध्यगीत आदि कृतियां महत्वपूर्ण हैं। कामायनी को आधुनिक काल का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य कहा जाता है।

छायावादोत्तर काल में हरिवंशराय बच्चन का नाम उल्लेखनीय है। छायावादी काव्य में आत्मपरकता, प्रकृति के अनेक रूपों का सजीव चित्रण, विश्व मानवता के प्रति प्रेम आदि की अभिव्यक्ति हुई है।

प्रगतिवाद

सन 1936 के आसपास से कविता के क्षेत्र में बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ा प्रगतिवाद ने कविता को जीवन के यथार्थ से जोड़ा। प्रगतिवादी कवि कार्ल मार्क्स की समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। इस काल में मानव मन के सूक्ष्म भावों को प्रकट करने की क्षमता हिंदी भाषा में विकसित हुई।

युग की मांग के अनुरूप छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने अपनी बाद की रचनाओं में प्रगतिवाद का साथ दिया। नरेंद्र शर्मा और दिनकर ने भी अनेक प्रगतिवादी रचनाएं कीं। प्रगतिवाद के प्रति समर्पित कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, रामविलास शर्मा, त्रिलोचन शास्त्री और मुक्तिबोध के नाम उल्लेखनीय हैं। इस धारा में समाज के शोषित वर्ग –मजदूर और किसानों–के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गयी, धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक विषमता पर चोट की गयी और हिंदी कविता एक बार फिर खेतों और खलिहानों से जुड़ी, लेकिन एक नये अंदाज में।

प्रयोगवाद

प्रगतिवाद के समानांतर प्रयोगवाद की धारा भी प्रवाहित हुई। अज्ञेय को इस धारा का प्रवर्तक स्वीकर किया गया। सन 1943 में अज्ञेय ने तार सप्तक का प्रकाशन किया। इसके सात कवियों में प्रगतिवादी कवि अधिक थे। रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, नेमिचंद जैन, गजानन माधव मुक्तिबोध, गिरिजा कुमार माथुर और भारतभूषण अग्रवाल ये सभी कवि प्रगतिवादी हैं। इन कवियों ने कथ्य और अभिव्यक्ति की दृष्टि से अनेक नए नए प्रयोग किये। अतः तारसप्तक को प्रयोगवाद का आधार ग्रंथ माना गया। अज्ञेय द्वारा संपादित प्रतीक में इन कवियों की अनेक रचनाएं प्रकाशित हुई।

नई कविता और समकालीन कविता

सन 1953 ईस्वी में इलाहाबाद से नई कविता पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इस पत्रिका में नई कविता को प्रयोगवाद से भिन्न रूप में प्रतिष्ठित किया गया। दूसरा सप्तक(1951), तीसरा सप्तक (1959) तथा चौथे सप्तक के कवियों को भी नए कवि कहा गया। वस्तुतः नई कविता को प्रयोगवाद का ही भिन्न रूप माना जाता है। इसमें भी दो धराएँ परिलक्षित होती हैं।

व्यक्ति की निजता को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करने वाली धारा जिसमें अज्ञेय, धर्मवीर भारती, कुंवर नारायण, श्रीकांत वर्मा,जगदीश गुप्त प्रमुख हैं तथा प्रगतिशील धारा जिसमें गजानन माधव मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन शास्त्री, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह तथा सुदामा पांडेय धूमिल आदि उल्लेखनीय हैं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना में इन दोनों धराओं का मेल दिखाई पड़ता है। इन दोनो ही धाराओं में अनुभव की प्रामाणिकता, लघुमानव की प्रतिष्ठा तथा बौधिकता का आग्रह आदि प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। साधारण बोलचाल की शब्दावली में असाधारण अर्थ भर देना इनकी भाषा की विशेषता है।

समकालीन कविता में गीत नवगीत और गजल की ओर रूझान बढ़ा है। आज हिंदी निरंतर गतिशील और व्यापक होती हुई काव्यधारा में संपूर्ण भारत के सभी प्रदेशों के साथ ही साथ संपूर्ण विश्व में लोकप्रिय हो रही है। इसमें आज देश विदेश में रहने वाले अनेक नागरिकताओं के असंख्य विद्वानों और प्रवासी भारतीयों का योगदान निरंतर जारी है।

गद्य साहित्य के विकास के एक सामान्य सी समझ के लिए साहित्य इतिहास की इन धाराओं से रूबरू होना भी आवश्यक है।

रामचंद्र शुक्ल एवं प्रेमचंद युग

गद्य के विकास में इस युग का विशेष महत्त्व है। पं. रामचंद्र शुक्ल (1884–1941) ने निबंध, हिन्दी साहित्य के इतिहास और समालोचना के क्षेत्र में गंभीर लेखन किया। उन्होंने मनोविकारों पर हिंदी में पहली बार निबंध लेखन किया। साहित्य समीक्षा से संबंधित निबंधों की भी रचना की। उनके निबंधों में भाव और विचार अर्थात् बुद्धि और हृदय दोनों का समन्वय है। हिंदी शब्दसागर की भूमिका के रूप में लिखा गया उनका इतिहास आज भी अपनी सार्थकता बनाए हुए है। जायसी, तुलसीदास और सूरदास पर लिखी गयी उनकी आलोचनाओं ने भावी आलोचकों का मार्गदर्शन किया। इस काल के अन्य निबंधकारों में जैनेन्द्र कुमार जैन, सियारामशरण गुप्त, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और जयशंकर प्रसाद आदि उल्लेखनीय हैं।

कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद ने क्रांति ही कर डाली। अब कथा साहित्य केवल मनोरंजन, कौतूहल और नीति का विषय ही नहीं रहा बल्कि सीधे जीवन की समस्याओं से जुड़ गया। उन्होंने सेवा सदन, रंगभूमि, निर्मला, गबन एवं गोदान आदि उपन्यासों की रचना की। उनकी तीन सौ से अधिक कहानियाँ मानसरोवर के आठ भागों में तथा गुप्तधन के दो भागों में संग्रहित हैं। पूस की रात, कफन, शतरंज के खिलाड़ी, पंच परमेश्वर, नमक का दरोगा तथा ईदगाह आदि उनकी कहानियाँ खूब लोकप्रिय हुई। इसकाल के अन्य कथाकारों में विश्वंभरनाथ शर्मा

कौशिक, वृंदावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, जयशंकर प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का विशेष स्थान है। इनके चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी जैसे ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास और कल्पना तथा भारतीय और पाश्चात्य नाट्य पद्यतियों का समन्वय हुआ है। लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीशचंद्र माथुर आदि इस काल के उल्लेखनीय नाटककार हैं।

अद्यतन काल

इस काल में गद्य का चहुँमुखी विकास हुआ। पं हजारी प्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, नंददुलारे वाजपेयी, नगेंद्र, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा डॉ. रामविलास शर्मा आदि ने विचारात्मक निबंधों की रचना की है। हजारी प्रसाद द्विवेदी,विद्यानिवास मिश्र, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, विवेकी राय, और कुबेरनाथ राय ने ललित निबंधों की रचना की है।हरिशंकर परसांई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींन्द्रनाथ त्यागी, तथा के पी सक्सेना के व्यंग्य आज के जीवन की विद्रूपताओं के उद्घाटन में सफल हुए हैं।

जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, इलाचंद्र जोशी, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव और भगवती चरण वर्मा ने उल्लेखनीय उपन्यासों की रचना की। नागार्जुन, फणीश्वर नाथ रेणु, अमृतराय, तथा राही मासूम रजा ने लोकप्रिय आंचलिक उपन्यास लिखे हैं। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, भैरव प्रसाद गुप्त, आदि ने आधुनिक भाव बोध वाले अनेक उपन्यासों और कहानियों की रचना की है। अमरकांत, निर्मल वर्मा तथा ज्ञानरंजन आदि भी नए कथा साहित्य के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं।

प्रसादोत्तर नाटकों के क्षेत्र में लक्ष्मीनारायण लाल, लक्ष्मीकांत वर्मा, तथा मोहन राकेश के नाम उल्लेखनीय हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने संस्मरण रेखाचित्र व जीवनी आदि की रचना की है। शुक्ल जी के बाद पं हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंद दुलारे वाजपेयी, नगेन्द्र,रामविलास शर्मा तथा नामवर सिंह ने हिंदी समालोचना को समृद्ध किया।

वर्तमान में समय के बदलने के साथ ही विधाओं में भी बदलाव आया है। कहानी, कविता, रिपोर्ताज, डायरी, यात्रा वृतान्त व अन्य विधाएं भी अपने कलेवर और रूप में बदल रही हैं। अनेक रचनाकारों की बहुविध रचनाएं अनेकानेक माध्यमों से प्रकाशित हो रही हैं और चर्चा में आ रही हैं। हमारे अपने समय के रचनाकारों में विमल कुमार, विनोद कुमार शुक्ल, कात्यायनी, राजेश जोशी, उदय प्रकाश, संजय, जितेन्द्र, जया जादवानी, आदि महत्वपूर्ण हैं। इन रचनाकारों की रचनाएं इंटरनेट पर कविताकोश और गद्यकोश पर खोजी और पढ़ी जा सकती हैं।

4QHF47

-: वाहन चलाते समय वाहन में रखे जाने वाले महत्वपूर्ण दस्तावेज :-

चालक अनुज्ञा पत्र :- वाहन चलाते समय चालक को वैद्य अनुज्ञा पत्र (ड्रायविंग लायसेंस) साथ रखना अनिवार्य होता है।

पंजीयन प्रमाण- पत्र :- सभी प्रकार के डीजल/पेट्रोल/इलेक्ट्रिक पावर से चलने वाले वाहनों के लिए परिवहन विभाग द्वारा जारी पंजीयन प्रमाण-पत्र (रजिस्ट्रेशन सर्टिफिकेट) रखना आवश्यक होता है।

फिटनेस प्रमाण-पत्र :- व्यवसायिक प्रयोग में आने वाले वाहनों के सभी कलपुर्जों को दुरूस्त रखना अतिआवश्यक है। अतः ऐसे वाहनों को फिटनेस प्रमाण-पत्र की आवश्यकता होती है।

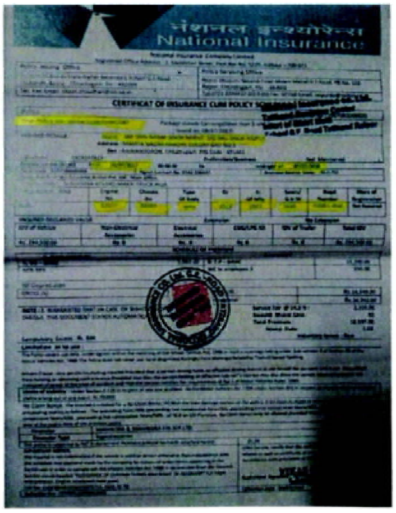

बीमा प्रमाण-पत्र :- सभी प्रकार के डीजल/पेट्रोल/इलेक्ट्रिक पावर से चलने वाले वाहनों के लिए बीमा प्रमाण-पत्र (इंश्योरेंस सर्टिफिकेट) रखना आवश्यक होता है।

प्रदूषण प्रमाण-पत्र :- डीजल/पेट्रोल चलित वाहनों के लिए कार्बन उत्सर्जन को नियंत्रित रखने तथा पर्यावरण को बनाये रखने हेतु पदूषण नियंत्रण प्रमाण-पत्र रखना आवश्यक होता है।